मौर्य प्रशासन

मौर्य साम्राज्य के प्रतापी तथा योग्य राजाओं ने पहले पहल भारत वर्ष को एक राजनीतिक सूत्र में आबद्ध करने का प्रयत्न किया था। इस राजनैतिक समीकरण का ताज मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त का आदर्श चरितार्थ किया था। इस नवजात मगध साम्राज्य में मापक रखने और उसकी श्री स्मृद्धि की वृद्धि करने, विदेशी खतरा का सामना करने, अस्त–व्यस्त भारत के असंख्य टुकडो को जोड़कर एक करने, चक्रवर्ती आदर्श को व्यवहारिक राजनीति में एक वास्तवीकरण के रूप में प्रतिष्ठित करने भारतीयों को विभिन्न कार्य क्षेत्रों में एक महान प्रयत्न के लिये उत्साह से अनुप्राणित करने और भारत को राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टितयों से बाहरी दुनिया के सम्पर्क में लाने के लिए एक कुशल व मजबूत प्रशासन की आवश्यकता थी जो कि मौर्य प्रशासक बन सबसे चरितार्थ करने में एकदम सफल रहे।

मौर्य युग में राजतंत्र की विजय हुई थी। इस युग में गणराज्यों का ह्रास होने लगा था और शासन सत्ता अत्यधिक केन्द्रित होती गई। सौभाग्य वंश मौर्य साम्राज्य भी राजनीतिक तथा प्रशासकीय पद्धति के अध्ययन के लिये प्रमाणिक सामग्री की ऐसी प्रचूरता है कि जैसी मध्यकालीन इतिहास में मुगल के पूर्व किसी अन्य काल के सम्बन्ध में उपलब्ध नहीं है।

मेगस्थनीज का विवरण कौटिल्लय : अर्थशास्त्र, अशोक के अभिलेखों आदि का यदि सम्यक ढंग से विवेक किया जाये तो एक दूसरे के पूरक ही सिद्ध होते हैं दिव्यापदान तथा मुद्राराक्षस जैसे साहित्यिक प्रभाण यद्यपि काफी बाद के है तथापि ऐसा लगता है उनके कतिपय भागो में जिन परम्पराओं का उल्लेख है वे यथावत है। इसी प्रकार रूद्रदामन के गिरनार अभिलेख से भी जिसका समय 150 ई0 है मौर्यो के अधीनस्थ गुजरात के प्रादेशिक प्रशासन की सुन्दर झलक मिलती है। मौर्य प्रशासन विशेष रूप से चन्द्रपाल के प्रशासन की जानकारी का प्रमुख स्त्रोत कौटिलय अर्थशास्त्र है जिससे ज्ञात होता है कि इसकी शासन व्यवस्था का मूलमंत्र जनकल्याण था। जैसा कि इसके एक उदाहरण प्रतीत होता है।

"प्रजा सूखे सूखम राजः प्रज्यनाम चहिते हितमुं।
नात्मत प्रियम् हितम् राजः प्रजामन च हिते हितमू।।"

मौर्य प्रशासन की व्यवस्था करने के लिये इसको तीन भागो में बांटा गया है :–

1. केन्द्रीय शासन 2. प्रांतीय शासन 3. स्थाई शासन व्यवस्था

साम्राज्य का केन्द्रीय शासन पाटलीपुत्र से सम्राट स्वंय करता था तथा प्रान्तीय शासन सम्राट की और राजकुमार तथा महामात्र करते थे।

1. केन्द्रीय शासन : तत्कालीन आर्थिक, परिस्थितियां तथा उनकी अपनी आवश्यकताओं ने मौर्य शासन प्रणाली को केन्द्रीयत नौकरशाही का रूप दे दिया। मौर्य शासन प्रणाली का केन्द्र बिन्दु राजा होता था। जिसमें साम्राज्य की सभी व्यवस्थापिका न्यायपालिका, कार्यपालिका शक्तियां

निहित थी। इस काल तक उसके अधिकारों तथा शक्ति में असाधारण वृद्धि हो चुकी थी। अशोक ने तो इसकी व्याख्या पैतृक निरंकुशताबाद के रूप में किया था जिसका सामूहिक संदेश था कि सारे मनुष्य मेरे बच्चे है। परम्परागत राज शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार राजा धर्म का रक्षक है। निर्माता नहीं। राज शासन की वैधता इस बात पर निर्भर थी कि वह धर्म के अनुकूल हो। अतः राजा की प्रत्येक आशा धर्म तथा लोक व्यवहार के अनुकूल होनी चाहिए। लेकिन कौटिल्य ने राजा को अत्यधिक शक्ति प्रदान करते हुए एक नया प्रतिमान स्थापित किया है जिसके अनुसार राजाशा, धर्म तथा लोक व्यवहार और चरित्र सामाजिक सदाचार, का भी अतिक्रमण कर सकती है तथा उन सबसे उपर है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि इस युग में राजाओं को सर्वश्रेष्ठ प्रमुखता दी गयी थी।

चन्द्रगुप्त तथा अशोक दोनों स्फूर्तिवान, उत्साही, उद्यमी तथा प्रजाहितैषी थे। चन्द्रगुप्त की कार्य तत्परता के सम्बन्ध में मेगस्थनीय ने लिखा है कि ''राजा दरबार में बिना व्यवधान के कार्यरत रहता था।'' कौटिल्य ने कहा है कि जब राजा दरबार में बैठा हो तो उसे बाहर जनता से प्रतीज्ञा नहीं करवानी चाहिये। क्योंकि जब राजा प्रथा के लिये दुर्लभ तथा अपने कार्य को अधिकरियों के भरोसे छोड़ देता है तो वह प्रजा में विद्रोह की भावना उत्पन्न करता है''
मैगस्थनीज : मैगस्थनीज ने लिखा है कि प्रजा प्रत्येक समय उसका दर्शन कर सकती थी। यहां तक जब वह मालिश करा रहा हो उस समय भी। अशोक के छठे शिलालेख से ज्ञात होता है कि उसने एक विज्ञप्ति जारी किया था कि वह लोकमत की जानकारी तथा प्रजा के कार्य के लिये प्रत्येक स्थान पर मिल सकता है और प्रजा की भलाई में उसे बड़ा संतोष मिलता है।

राजा ही राज्य की नीति निर्धारित करता था और अपने अधिकारियों के राजाज्ञों द्वारा समय–समय पर निर्देश दिया करता था। चन्द्रगुप्त के समय पर गुप्तचरों के माध्यम से दूरस्थ प्रदेशों में शासन कर रहे अधिकारियों पर सम्राट पूरा नियंत्रण रखता था। अधिकारियों की नियुक्ति देश की आन्तरिक रक्षा और शान्ति, युद्ध संचालन, सेना का नियंत्रण आदि सभी राजा के अधीन था। इस युग में राजाओं को देवाना प्रिय अर्थात देवताओं का प्यारा कहा जाता था। कदाचित प्रिय दर्शन की शक्ति में भी वृद्धि हो रही थी। अब वह प्रधानमंत्री का कार्य करने लगा था। यह चन्द्रगुप्त तथा कौटिल्य के पारस्परिक सम्बन्ध से स्पष्ट हो जाता है। डा0 स्मिथ ने मौर्य युग के राजाओं को निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी कहा हैं। लेकिन यह अतर्क संगत है। कौटिल्य अर्थ शास्त्र से ज्ञात होता है कि राजा स्वेच्छाचारी नहीं था। उसका एक मात्र उद्देश्य प्रजा हित था।

मंत्रिमण्डल : राजा अपने सहायतार्थ मंत्रियों की नियुक्ति करता था। राजा से अपेक्षा की जाती थी कि वह अपने मंत्रियों के साथ परामर्श करेगा। कौटिल्य का दृढ़ मत था कि राजा की प्रभुत्ता बिना सहायता के सम्भव नहीं हो सकती। अब राजा को सचिवों की नियुक्ति करनी चाहिए तथा उनसे मंत्रणा लेनी चाहिए। इस प्रकार राज्य के सर्वोच्च अधिकारी मंत्री कहलाते थे। उनकी संख्या तीन या चार होती थी। इनका चयन अमात्य वर्ग से होता था। ये मंत्री एक प्रकार से अंतरंग मंत्रिमण्डल के सदस्य होते थे। राज्य के सभी कार्य इसी मंत्रिमण्डल के विचार विमर्श से होता था।

मंत्रीमण्डल के अतिरिक्त एक मंत्रि परिषद् भी होती थी। अशोक के शिलालेखों में ''परिधा' का उल्लेख मिलता है। जहां तक मंत्रियों तथा मंत्रिपरिषद् के अधिकार का प्रश्न है। उनका मुख्य कार्य राजा को परामर्श देना थ। लेकिन अंतिम निर्णय राजा का ही होता था। अशोक के छठें शिलालेख से ज्ञात होता है कि परिषद् राज्य की नीतियों अथवा राजाज्ञाओं पर विचार विमर्श करती थी। यदि आवश्यक समझती थी तो उसमें संशेधन का सुझाव देती थी। रोमिला थापर का विचार है कि मंत्रिपरिषद् को कोई सुनिश्चित राजनीतिक मर्यादा नहीं प्राप्त थी। उनकी शक्ति राजा पर निर्भर होती थी। कौटिल्य के अनुसार चन्द्रगुप्त की मंत्रिपरिषद् में 18 सदस्य थे। ऐसा लगता है कि मंत्रियों का पद मंत्रिपरिषद् से ऊंचा था। मंत्रियों के ही परामर्श से सम्पूर्ण राज्य का संचालन होता था।

राज्य के प्रमुख कर्मचारी तथा विभाग : शासन का भार मुख्यतः एक विशाल वर्ग पर था। जो साम्राज्य के विभिन्न भागो में शासन का संचालन करते थे। अर्थशास्त्र में सबसे उंचे स्तर के कर्मचारियों को तीर्थ कहा गया है। ऐसे 18 तीर्थों का उल्लेख अर्थशास्त्र में मिलता है जिनमें से मुख्यतः मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, समाहती, सन्निधावा, पदैढ़ता, नायक, हारिक, कर्मान्तिक, मंत्रीपरिषद् का अध्यक्ष, दण्डफल, दुर्गपाल आदि है।

अर्थ शास्त्र में तीर्थ शब्द एक ही दो स्थान पर मिलता है। लेकिन अधिकतर स्थानों पर इन्हें अमात्य, महाभात्र या अध्यक्ष आदि कहा गया है। ये महत्वपूर्ण तीर्थ या अमात्य मंत्री या पुरोहित थे। राजा इन्हीं के परामर्श से अन्य मंत्रियों तथा अमात्यों की नियुक्ति करता था। डा0 रोमिला थापर का विचार है कि केन्द्रीय प्रशासन के नियंत्रक में दो मुख्य तथा महत्वपूर्ण पद कोषाध्यक्ष तथा मुख्य समाहर्ता के थे। कोषाध्यक्ष का कार्य नकद नकद आय का हिसाब रखना और वस्तुओं के रूप में प्राप्त आय को संग्रहित करना था।

मुख्य समाहर्ता : लिपिकों के एक निकाय क सहायता से साम्राज्य के विभिन्न भागों से प्राप्त करों का लेखा जोखा रखता था। प्रत्येक प्रशासकीय विभाग का समुचित हिसाब रखा जाता था जिसे सारे मंत्रियों द्वारा संयुक्त रूप से राजा के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता था। उसका उद्देश्य सम्भवतः यह था कि गबन व धोखेबाजी की संभावना न रहे। प्रत्येक विभाग में अधीक्षकों तथा सहायक अधिकारियों का एक बड़ा वर्ग होता था। अधीक्षक स्थानीय केन्द्रों पर रहते थे और स्थानीय प्रशासन तथा केन्द्रीय सरकार के मध्य कार्य करते थे।

अर्थशास्त्र के अध्यक्ष प्रचार अध्याय में 26 अध्यक्षों का उल्लेख है। ये विभिन्न विभागों के अध्यक्ष होते थे और मंत्रियों का निरीक्षण में कार्य करते थे। कतिपय अध्यक्ष इस प्रकार के थे। कोषाध्यक्ष, सीताध्यक्ष, पण्याध्यक्ष, बन्धनागाध्यक्ष आदि। इन अध्यक्षों के कार्य विस्तार से ज्ञात होता है कि राज्य के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन और अध्ययन से कार्य विधि पर पूरा नियंत्रण रखता था। केन्द्रीय महामात्य तथा अध्यक्षों के अधीन अनेक निम्न स्तर के कर्मचारी होते थे जिन्हें युक्त और उपयुक्त की संज्ञा दी गयी थी। अशोक के शिलालेखों में तीसरे भी युक्त का उल्लेख मिलता है।

केन्द्रीय शासन का एक महत्वपूर्ण विभाग सैन्य विभाग था। यूनानी लेखकों के अनुसार चन्द्रगुप्त के सैन्य विभाग में 60000 पैदल, 50000 अश्व, 9000 हाथी तथा 400 रथों की एक स्थाई सेना थी। इसकी देखरेख तथा रख रखाव के लिए एक पृथक सैन्य विभाग था। इस विभाग का संगठन 6 समितियों के हाथ में था। प्रत्येक समिति में 5–5 सदस्य होते थे।

न्याय व्यवस्था : सम्राट न्याय प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी होता था। मौर्य साम्राज्य में न्याय के लिये अनेक न्यायालय थे। सबसे नीचे ग्राम स्तर पर न्यायालय थे। जहां ग्रामणी तथा ग्रामबुद्ध या ग्राम मुखिया कतिपय मानको को निस्तारण करते थे। ग्राम न्यायालय से ऊपर संग्रहण, प्रोणमूध, स्थानीय व जनपद स्तर के न्यायालय होते थे। इन सबसे ऊपर पाटलिपूत्र का केन्द्रीय न्यायालय था। यूनानी लेखक ने ऐसे न्यायाधीशों की भी चर्चा की है जो भारत में रहने वाले विदेशियों के अतिरिक्त अन्य सभी न्यायालय दो प्रकार के थे :–

1. धर्म स्थीय 2. कंटक शोधन इनमें धर्म स्थीय एक प्रकार से दीवानी न्यायालय के समान थे। कंटक शोधन न्यायालय में राजा तथा प्रजा के बीच के विवाद सुने जाते थे। इन्हें हम एक प्रकार से फौजदारी न्यायालय कह सकते थे। इसके आलावा चोरी, डाके, मारपीट के मामले

भी इनमें पेश किये जाते थे। किन्तु समाज विरोधी तत्वों को समुचित दंड के देने का कार्य मुख्यतः कंटक शोधन न्यायालय ही करते थे।

नीलकंठ शास्त्री के अनुसार ''कंटक शोधन न्यायालय एक नये प्रकार के न्यायालय थे जो मौर्य साम्राज्य की अधिकाधिक जटिल सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये बनाये गये थे ताकि एक अत्यन्त संगठित शासन तंत्र के विविध विषयों से सम्बद्ध निर्णयों को कार्यान्वित किया जा सके। वे एक प्रकार के विशेष न्यायालय थे। जहां अभियोगों पर तुरंत विचार किया जाता था।''

मौर्य केन्द्रीय प्रशासन का एक बुनियादी पक्ष गुप्तचर प्रणाली थी। अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि गुप्तचरों को एकान्तवासियों गृहस्थों, व्यापारियों, संवासियों, विद्यार्थियों, भिखारियों तथा वेश्याओं के भेष में कार्य करना चाहिए। मौर्य काल में हमें दो प्रकार के गुप्तचरों का उल्लेख मिलता है : 1. संस्था 2. संचरा।

संस्था : वे गुप्तचर जो एक ही स्थान पर संस्थाओं में संगठित होकर–कार्यातक, क्षात्र, उपस्थित, गृहस्तिक, वैदिक, तापस आदि के वेष में कार्य करते थे।

संचार : ऐसे गुप्तचर थे जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते थे। रोमिला थापर के अनुसार ''सामान्यतया नहीति निर्धारक का काम केन्द्र में होता था। लेकिन गुप्तचर उसे स्थानीय हितों को दृष्टि्गत रखते हुए कार्यान्वित करते थे'' अशोक ऐसे अभिकर्ताओं की भी चर्चा करता है जो उसके पास तक समाचार पहुंचाते थे और सामान्यतः उसे लोकमत से अवगत कराते थे।

प्रान्तीय प्रशासन

मौर्य के साम्राज्य को कुशल प्रशासन चलाने के लिये कई–कई प्रशासनिक इकाइयों में बांटा गया था। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में इन प्रान्तों की संख्या कितनी थी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। लेकिन अशोक के समय इन प्रान्तो की संख्या पांच होने का प्रमाण मिलता है।

1. पहल प्रान्त उत्तरापथ था जिसकी राजधानी वहाशिका थी। इसमें कम्बोज, गन्धार, कश्मीर, अफगानिस्तान, पंजाब आदि थे।
2. दूसरे प्रांत अवन्तीराठत था। इसकी राजधानी उज्जवनी थी।
3. तीसरा कलिंग था जिसकी राजधानी वोसली थी। अवन्ती प्रांत में काठियावाड़, गुजरात, मालवा और राजूपताना आदि प्रदेश था।
4. दक्षिणापथ : इसकी राजधानी सूवर्णगिरी थी। इसके अन्तर्गत विध्यांचल के दक्षिण का समस्त प्रदेश था।
5. मध्यप्रदेश : इसकी राजधानी पाटलिपूत्र थी। इसमें उत्तर प्रदेश तथा प्राच्यप्रदेश बिहार और बंगाल सम्मिलित था। यह प्रांत स्वंय राजा द्वारा संचालित होता था। रोनिका थापर के अनुसार ''प्रत्येक प्रांत एक राजकुमार तथा राजपुरूष के अधीन होता था जिसकी पद मर्यादा महाराज्यपाल की होती थी। अपेक्षाकृत छोटी इकाइयों पर शासन करने के लिए राज्यपाल का चुनाव स्थानीय लोगो में किया जाता था। इनका विचार है कि केन्द्रीय शासन की तरह प्रांतीय शासन में भी मंत्रिपरिषद होती थी जो केन्द्रीय

मंत्रिपरिषद् की अपेक्षा स्वतन्त्र तथा शक्तिशाली होती थी और महाराज्यपाल पर अंकुश रखती थी। रोमिला थापर ने दिव्यावदान के कुछ उद्धरणों से यह निष्कर्ष निकाला है कि ''प्रान्तीय मंत्रिपरिषद् का सम्राट से सीधा सम्पर्क होता था। जैसा कि अशोक के शिलालेखों से भी ज्ञात होता है। हिसाब किताब की अतिरिक्त जांच कराने, प्रान्तीय शासन पर अंकुश रखने के लिय अशोक हर पांचवे वर्ष प्रान्तों में महापासों को भेजता था।

प्रत्येक प्रान्त का उपविभाजन जिलों में किया गया था जिन्हें आहार या विषय कहा जाता था जो सम्भवतः विषयपति के अधीन था। इस जिले या विषय के निम्नलिखित विभाग होते थे। अ

स्थानीय : यह 200 गांव के बराबर होता था। इसके बाद द्रोणमुख 400 ग्राम, पुनः खावर्टिक 200 ग्राम, संग्रहण यह 100 ग्राम के बराबर होता था। रोमिला थापर का सुझाव है कि प्रत्येक जिले का विभाजन ग्राम समूहों में हुआ था तथा प्रशासन की अंतिम इकाई ग्राम होती थी। ग्राम समूह में दो अधिकारी होते थे। एक लेखपाल व दूसरा कर समाहर्ता लेखपाल सीमाओं की देखभाल करता था। भूमि तथा दस्तावेजो का पंजीकरण करता था। जनसंख्या की गणना तथा पशुओं का लेखा रखता था। कर समाहर्ता की जिम्मेदारी विभिन्न प्रकार के राजस्व का एकत्रीकरण करना था। प्रत्येक ग्राम के अपने पदाधिकारी होते थे। जैसे मुखिया लेखपाल तथा कर समाहर्ता के सामने उत्तरदायी होता था। ग्राम स्तर अधिकारियों के वेतन या तो कर देकर या भूमि अनुदान द्वारा चुकाया जाता था।

मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र के नगर प्रशासन का विस्तृत वर्णन किया है। इसके अनुसार नगर का शासन प्रबन्ध 30 सदस्यों का एक मण्डल या बोर्ड करता था। मण्डल के 06 समितियों में विभक्त था। प्रत्येक समिति में 5 सदस्य होते थे। यह आधुनिक काल में म्यूनिसिपल बोर्ड की तरह काम करता था। प्रथम समिति उद्योग शिल्पों का निरीक्षण करती थी। दूसरी विदेशियों की देखरेख करती थी। तीसरी जन्म मरण का लेखा करती थी। चौथी व्यापार और वाणिज्य थे। पांचवी–नवनिर्मित वस्तुओं के विक्रय का निरीक्षण करती थी। छठी–समिति का कार्य बिक्री कर वसूल करना था।

रोमिला थापर के अनुसार ''नगर प्रशासन का अध्यक्ष अधिकारी वर्ग होता था। नगर अधीक्षक जिसका अर्थशास्त्र में भी उल्लेख मिलता है शान्ति व्यवस्था की रक्षा करने और नगर को साफ सुथरा रखने का कार्य करता था। नगर अधीक्षक की सहायता के लिये एक लेखपाल तथा एक कर समाहर्ता होता था जिनके कार्य ग्राम समूह के लेखपाल के तथा कर समाहर्ता के समान थे।

मौर्यकालीन समाज

मौर्य साम्राज्य की सामाजिक दशा सम्बन्धी जानकारी के लिये हमको पर्याप्त सामग्री मिलती है। जिनमें कौटिल्य अर्थशास्त्र मेगस्थनीज कृत इण्डिका, अशोक के अभिलेख तथा अन्य विदेशियों के वर्णन आदि प्रमुख है।

मौर्य काल में हिन्दु सामाजिक व्यवस्था की दो विशेष संस्थाएं वर्ण और आश्रम एक निश्चित अवस्था तक पहुंच गयी थी। ग्रीक लेखकों के विवरणों से ज्ञात होता है कि कोई भी व्यक्ति अपनी जाति से बाहर विवाह नहीं कर सकता था और न ही अपनी जीविका को छोड़कर किसी अन्य की जीविका या शिल्प को अपना सकता था। उदाहरणार्थ : सैनिक, किसान या शिल्पकार, दार्शनिक नहीं बन सकता था और दार्शनिक न उनके पेशों को अपना सकता था।

पूर्ववर्ती धर्म शास्त्रों की भांति कौटिल्य ने भी वर्ण आश्रम व्यवस्था को सामाजिक संगठन का आधार माना है। अशोक के शिलालेखों में भी हमें गृहस्थों प्रव्रजिवों का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि मौर्य युग में चार आश्रमों की प्रथा अच्छी तरह स्थापित हो चुकी थी। कौटिल्य के अनुसार वर्ण आश्रमों की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है। धर्म शास्त्रों के अनुसार कौटिल्य ने भी चारों वर्णों के व्यवसाय निर्धारित किये थे। किन्तु क्षुर्दों को शिल्पकला और सेवावृत्ति के अतिरिक्त कृषि, पशुपालन और वाणिज्य से आजीविका चलाने की अनुमति दिया था। इन्हें सम्मिलित रूप में वार्ता कहा गया है। निश्चित है कि इस व्यवस्था से सूर्दों के आर्थिक सुधार का प्रभाव उसकी सामाजिक स्थित पर भी पड़ा होगा। 2. अर्थशास्त्र में एक और परिवर्तन दृष्टि्गोचर होता है वह यह है कि सूद्रों को आर्य कहा गया है तथा इसको भिन्न माना गया है और कहा गया है कि आर्य सूद्र को दास नहीं बनाया जा सकता है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि मौर्य काल में इसके पूर्ववर्ती कालों की अपेक्षा सूद्रो की स्थिति में कुछ सुधार हुआ था।

वैसे तो समाज में ब्राहमणों का स्थान सर्वोच्च था। किन्तु मनु तथा पूर्वगामी धर्म सूत्रों की भांति इस सर्वोच्चता को बार–बार दोहराने का प्रस्ताव अर्थशास्त्र में प्रयास नहीं किया गया है। इस समय भी ब्राहमण समाज का धार्मिक तथा बौद्धिक नेतृत्व करता था तथा ये ही शिक्षक तथा पुरोहित होते थे। ब्राहमणों द्वारा यज्ञ करवाये जाने का उल्लेख मेगस्थनीज ने भी किया है। राजा के पुरोहित, कानूनमंत्री, शिक्षक आदि ब्राहमणों में से ही नियुक्त किया जाते थे।

रोमिला थापर का विश्वास है कि ''वर्ण व्यवस्था ब्राहमण सिद्धान्तकारों के अनुसार सुचारू रूप से नहीं चल पायी। सैद्धान्तिक दृष्टि से प्रथम तीन वर्गों को जो द्विज कहलाते थे सूद्रो और अछूतों की तुलना में अधिक अधिकार प्राप्त थे। लेकिन वैश्य जो शास्त्रीय दृष्टि से तो द्विज थे अपनी विशेष अधिकृत स्थिति का समुचित लाभ नहीं उठा पाते थे। वे प्रथम दो वर्णों द्वारा सामाजिक रूप से बहिष्कृत थे। फिर भी वैश्य आर्थिक दृष्टि से इस समय तक शक्तिशाली हो चुके थे। क्यौंकि वाणिज्य उन्हीं के हाथो में था इस कारण इनके बीच संघर्ष अनिवार्य था।

पुनः इनका विचार है कि ''अशोक ने सामाजिक रैम्प पर जो बल दिया गया था उससे भी सामाजिक तनावों के अस्तित्व के संकेत मिलते हैं। ये अपने आक्रोश को आंशिक अभिव्यक्ति देने के लिए अनिश्वरवादी सम्प्रदायों विशेष रूप से बौद्ध मत का समर्थन किया। इसका परिणाम शायद हुआ कि धार्मिक क्षेत्र में ब्राहमणों और अनिश्वरवादी मतों के बीच वैमनस्य और बढ़ गया।

कौटिल्य ने मौर्यकालीन समाज में इन चार वर्षों के अतिरिक्त वर्ण संकट जातियों का भी उल्लेख किया है। इनकी उत्पत्ति धर्म शास्त्रों में अनुलोम व प्रतिलोम विवाहों के फलस्वरूप

बताई गयी है। इन वर्ण संकट जातियों में अम्वष्क निषाद, धारशव, रथकार, भत्ता, बैदेहक, मागध, सुत, पुल्लकस, वेण, चांडाल, श्वपाक इत्यादि प्रमुख हैं। कौटिल्य ने चांडालो के अतिरिक्त अन्य वर्ण संकट जातियों को सूद माना है। इनके अतिरिक्त तंतुवाय, रजक, दर्जी, सुनार, लुहार, बढई आदि व्यवसाय पर आधारित वर्ण जाति का रूप धारण कर चुके थे। जाति प्रथा की कुछ विशेषताओं की पुष्टि मेगस्थनीज ने अपनी इण्डिका में भी किया है जिसका विवरण उपर किया जा चुका है।

इस विवरण के अलावा मेगस्थनीज अपनी इण्डिका में लिखता है कि मौर्य समाज सात वर्गों में बटा था। उसका यह वर्गीकरण भारतीय ग्रन्थों में वर्णित वर्गीकरण से भिन्न था। उसके अनुसार दार्शनिक, किसान, सैनिक, शिल्पी, अहीर या चरवाहे, कारीगर या शिल्पी, न्यायाधिकारी और पार्षद थे। मेगस्थनीज का यह वर्णन भारतीय वर्ण व्यवस्था या जाति व्यवस्था से मेल नहीं खाता। दार्शनिकों की जाति को वह दो वर्गो में बाटता है 1. ब्राहमण 2. श्रमण। ब्राहमणों की वृत्ति के बारे में मेगस्थनीज का विचार था कि यज्ञ, अन्त्येष्टि, क्रिया तथा अन्य धार्मिक कृत्य करवाने के बदले उन्हें बहुमूल्य दक्षिणा निकलती थी। श्रमकों को भी इसने दो वर्गों में बांटा है। प्रथम श्रेणी में श्रमण वनों में रहते थे और दूसरे आयुर्वेद में कुशल होते थे। जो समाज में सम्मलित थे। रोमिला थापर का मत है कि इन दार्शनिकों से कर नहीं किया जाता था। किसानों में मुख्यतः कृषक, सूद्र तथा भूमि में कार्य वाले श्रमिक थे। सैनिक क्षत्रिय वर्ण के लोग थे। चरवाहे या तो सूद्र होते थे या अश्पृश्थ। शिल्पियों की जाति उनके व्यवसाय विशेष पर निर्भर करती थी। न्यायाधिकारी व पार्षद स्वस्तत्या शासन प्रणाली के अंग थे। वे या तो ब्राहमण होते थे या तो क्षत्रिय। रोमिला थापर का मत है कि मेस्स्थनीज ने मौर्य कालीन समाज का जो सप्तवर्गीय चित्ररण प्रस्तुत किया है उसने इसमें जाति, वर्ण और व्यवसाय के अन्तर को भुला दिया है। सम्भवतः एक विदेशी होने के नाते वह भारतीय समाज की जटिलताओं को समझने में असमर्भ रहा।

मौर्य कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति स्मृतिकाल की अपेक्षा अब अधिक सुरक्षित थी। उन्हें पुर्नविवाह तथा वियोग की अनुमति थी। इसके बावजूद भी इस काल की स्त्रियों की दशा को बहुत उन्नत नहीं कहा जा सकता। उन्हें बाहर जाने की स्वतन्त्रता नहीं थी। वे पति की इच्छा के विरूद्ध कोई कार्य नहीं कर सकती थी। यहां तक कि घर की स्त्रियां घर में ही रहती थी। कौटिल्य ने ऐसी स्त्रियों को अनिष्काषिणी कहा है।

कौटिल्य के अर्थ शास्त्र से सती प्रथा में प्रचलित होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस समय के धर्मशास्त्र इस प्रथा के विरूद्ध थे। बौद्ध तथा जैन अनुश्रुतियों में भी इस प्रथा का उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु यूनानी लेखकों ने उत्तर पश्चिम में सैनिकों की स्त्रियों के सती होने का उल्लेख किया है। हो सकता है कि योद्धा वर्ग की स्त्रियों में सती प्रथा प्रचलित रही हो।

मौर्य युग में बहुत सी स्त्रियां ऐसी थी जो विवाह द्वारा पारिवारिक जीवन न बिताकर गणिका या वेश्य के रूप में जीवन यापन करती थी। ये रूपजीवा कहलती थी। इनके कार्य का निरीक्षण गणिकाध्यक्ष तथा एक राजपुरूष करता था।

बहुत सी गणिकाएं गुप्तचर विभाग में भी कार्य करती थी। स्त्रियां अपने पति की ओर से धार्मिक क्रियाओं में भी भाग लिया करती थी। यह तथ्य स्वंय अशोक की द्वितीय देवी

कारूवाकी के हितकार्य सम्बन्धी अभिलेख से स्पष्ट होता है। अशोक के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि स्त्रियां प्रायः मंगल तथा अमंगल कार्यों में भाग लिया करती थी।

नगरों का जीवन ग्रामीण जीवन से ज्यादा चहल पहल युक्त था। नट, नर्तक, गायक, वादक, मदारी आदि अपनी कला का प्रदर्शन कर समाज का मनोरंजन करते थे। नगरों में प्रेक्षायें लोकप्रिय थी। स्त्री तथा पुरूष कलाकार दोनो प्रक्षाओं में भाग लेते थे। उन्हें रंगोपजीवी तथा रंगोपजीविनी कहा गया है। बिहार यात्रा, प्रवहण, आदि अन्य माध्यम से जिनके द्वारा जनता सामूहिक रूप से अपना मनोरजंन करती थी। एक प्रकार के समाज वे थे जिनमें लोग सुरापान, मांसभक्षण तथा मल्लयुद्ध को देखकर मनोरंजन करते थे। अशोक को ये समाज पंसद नहीं था। अतः उसने नये समाजों का प्रारम्भ किया जिनमें हरित, अग्नि, स्तम्भ तथा विमानों की झाकियां प्रस्तुत की जाती थी। ताकि लोगो में धर्माचरण का प्रोत्साहन हो। कुछ ऐसे भी समाज थे सरस्वती के भवन में आयोजित होते थे और इनमें साहित्यिक नाटकों का अभिनय तथा गोष्ठियों का आयोजन होता था। बिहारयात्राओं में मृगया और सुरापान की प्रधानता रहती थी। इसके स्थान पर अशोक ने धम्म यात्राओं का प्रचलन किया। प्रबहण भी एक प्रकार के सामूहिक समारोह थे जिनमें भोज्य और पेय पदार्थों का प्रचूरता से उपयोग किया जाता था।
दातस एक संस्थापित संस्था थी। यह केवल स्मृतियों तथा राजशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों में ही नहीं पायी जाती बल्कि अभिलेखों में भी पायी जाती है। अशोक दास और नृत्य में अन्तर रखता है और सबके लिये दया के बर्ताव का आदेश देता है। परन्तु मेगस्थनीज ने लिखा है कि भारत में दास नहीं थे। सभी भारतवासी समान थे। डायोडोटस मे भी लिखा है कि कानून के अनुसार उनमें कोई भी दास नहीं हो सकता था। मेगस्थनीज को उद्द्धित करते हुए ये स्टेबो का कहना है कि भारतीयों में किसी ने भी अपनी सेवा में दास नहीं रखते थे। पुनः स्ट्रेबो कहता है कि **चूंकि उनके पास दास नहीं थे। अतः उनके बच्चो की अधिक आवश्यकता होती थी।** परन्तु भारतीय इलाको से निकल कर इन बस्तियों में लाया जा रहा था। निःसन्देह कलिंग से विस्थापित डेढ लाख बन्दियों को बंजर भूमि साफ करने और नयी बस्तियों के बसाने का कार्य में लगाया गया था। इन बस्तियों में रहने वाले लोगो के लिए शास्त्रार्थ निषिद्ध थे। उनका एक मात्र कार्य खेती करना था। उनकी अतिरिक्त उपज को सरकार ले लिया करती थी।

राजकीय भूमि पर दासों, कर्मकारों और कृषकों द्वारा जुताई व बुआई होती थी। दास कर्मकारों को भोजन आदि दिया जाता था और कार्य के दौरान नकद मासिक वेतन आदि भी दिया जाता था। परन्तु ऐसी भी राजकीय भूमि होती थी जिस पर सीलाध्यक्ष द्वारा खेती नहीं करायी जाती थी। ऐसी भूमि पर करद कृषक खेती करते थे। मेगस्थनीज, स्ट्रेबो, एरियन इत्यादि यूनानी लेखकों का विचार है कि सारी भूमि राजा की होती थी। कृषक राजा के लिए खेती करते थे और 1/4 भाग राजा को लगान देते थे। इसके विपरीत रोमिला थापर का विचार है कि भूमि का स्वामित्व राजा के पास होने का यह आशय यह नहीं था कि व्यक्तिगत लोग थोडी बहुत भूमि के स्वामी नहीं हो सकते थे। यह स्वामित्व केवल उस भूमि पर होता था जिसमें स्वामी या राजा स्वंय खेती करें। अथवा जिसके लिए श्रमिकों की आवश्कता हो। इनके अनुसार राज्य द्वारा भी और व्यक्तिगत लोगो द्वारा भी श्रमिक रखने की प्रथा भाग थी। इसका उल्लेख अशोक के शिलालेख में भी मिलता है।

रोमिला थापर : के अनुसार भू–राजस्व दो प्रकार का था। प्रथम भूमि के उपयोग पर लगान दूसरा उपज पर करारोपण। अलग–2 आंचलो में करारोपण की दरें अलग–2 थी। जो भूमि की उपज के छठे हिस्से से लेकर एक चौथाई तक होती थी। करारोपण प्रत्येक व्यक्तिगत कृषक द्वारा दिया जाता था। सम्पूर्ण गांव के आधार पर नहीं। साथ ही भूमि की गुणवत्ता का भी ध्यान दिया जाता था। कौटिल्य के अनुसार यदि कृषक अपने बैल, बीज और हथियार लाये तो उपज का चह 1/2 भाग को अधिकारी होते थे और यदि कृषि उपकरण राज्य द्वारा दिये जाते तो 1/4 या 1/3 अंश के भागी थे। कौटिल्य के अनुसार भी इस राजकीय भूमि के अतिरिक्त ऐसी भूमि भी थी कि जो गृहपतियों तथा अन्य कृषकों की निजी भूमि होती थी और वे उपज का 1/2 भाग राजा को कर के रूप में देते थे।

इन कृषकों के अवर नियाम अधिकारी समाहर्ता, स्थानिक तथा गोप होते थे। जो गांवो में भूमि तथा अन्य प्रकार की सम्पत्ति के आंकडे तथा लेखा जोखा रखते थे। राज्य की भूमि की व्यवस्था सीताध्यक्ष द्वारा होती थी। उससे होने वाली आय को कौटिल्य ने सीता कहा है।

भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार की पुष्टि अर्थ शास्त्र के क्षेत्रक–भूस्वामी, उपवास–काश्तकार तथा स्वाम्व से भी हो जाती है। अर्थ शास्त्र में कहा गया है कि जिस भूमि का स्वामी नहीं है वह राजा की हो जाती है। स्वाम्य शब्द के क्रय तथा विक्रय का भी अधिकार था।

मौर्यकाल में कृषि अवस्थाओं के संदर्भ में सिंचाई के महत्व को पूरी तरह समझा गया था। कई क्षेत्रों में सिंचाई के लिये पानीं माप कर वितरित किया जाता था। अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि जहां कहीं राज्य द्वारा सिंचाई की व्यवस्था की जाती थी वहां एक नियमित जलकर वसूल किया जाता था। इस प्रकार राज्य द्वारा सिंचाई का समुचित प्रबन्ध किया गया था। इसे अर्थ शास्त्र 'सेतृवंध' कहा गया है। इसके अन्तर्गत तालाब, कुएं तथा झीलों पर बांध बनाकर एक स्थान पर पानीं एकत्रित करना आदि निर्माण कार्य आते थे। जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यपाल ने सौराठत में एक नदीं पर बांध बनवाकर सुदर्शन झील बनवाया था। इसके अलावा जलागारों, जलाशयों, नहरों और कूओं से सिंचाई का प्रबन्ध सरकार का उत्तरदायित्व माना जाता था। इसके अलावा जलागारी, जलाशयों, नहरों और कूओं से सिंचाई का प्रबन्ध सरकार का उत्तरदायित्व माना जाता था।

कृषि भूमि के अतिरिक्त वन एवं चारागाह भी थे। वन दो प्रकार के थे 1. हस्तिवन जहां हाथी रहते थे 2. दस्यवन : जहां अनेक प्रकार की लकड़ी, लोहा, तांबा इत्यादि पाया जाता था। जंगलो पर राज्य का अधिकार था।

यदि मौर्य काल में कृषि व्यवस्था न एक राजनीति साम्राज्य के निर्माण में सहायता दी तो साम्राज्य ने बदले में आर्थिक गतिविधि के एक और रूप को प्रोत्साहन दिया। उप महाद्वीप ने राजनीति एकीकरण का और एक सुदृढ तथा केन्द्रीयकृत सरकार से मिलने वाली सुरक्षा का एक अपेक्षाकृत उल्लेखनीय परिणाम यह था कि विभिन्न श्रेणियों और फलतः व्यापार में विस्तार की सम्भावनाएं बढ़ गयी। प्रशासन में कुशलता होने से व्यापार का संगठन अपेक्षाकृत सरल हो गया और विभिन्न शिल्पों ने धीरे–2 लघु स्तरीय उद्योगो का रूप धारण कर लिया। प्रायद्वीप में खुदाई के विभिन्न स्थलों पर तीसरी शताब्दी ई0पू0 के स्तरों पर पाये गये उत्तरी काली

पॉलिश के बर्तन इस बात के सूचक हैं कि मौर्य काल में व्यापार का विस्तृत विस्तार हो चुका था।

मेगस्थनीज ने शिल्पियों को चौथी जाति जाना है। इसके अनुसार उनमें से कुछ राज्य को कर देते थे और नियत सेवायें भी करते थे। रोमिला थापर का सुझाव है कि राज्य ने कुछ शिल्पियों को जैसे कवच निर्माताओं, जलपोत निर्माताओं आदि को सीधे अपनी सेवा में ले लिया था और उनकी आय को कर मुक्त कर दिया था। लेकिन राजकीय कार्यशालाओं तथा कताई एवं बुनाई शालाओं एवं राजकीय खानों में काम करने वाले अन्य लोगो की आय पर कर लगता था। बाकी लोग या तो व्यक्तिगत रूप से या किसी शिल्पी श्रेणी के सदस्यों के रूप में कार्य करते थे। ये श्रेणियां विशाल तथा मिश्रित ढांचे की होती थी और शिल्पियों के लिये इनमें अनेक काम करने और श्रेणियों के साथ प्रतियोगिता करने का व्यय बच जाता था। शिल्पियों के जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा को राज्य की ओर से समुचित व्यवस्था थी।

मौर्य युग का प्रधान उद्योग मूत कातने और बुनने का था। ऊन, रेशे, कपास, छाज, क्षोम और रेशम सूत कातने के लिए प्रयुक्त किया जाता था। अर्थ शास्त्र से पता चलता है कि काशी, बंग, पुण्ड, कलिंग, मालवा, सूती वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थे। काशी तथा पुण्ड में रेशमी कपडे भी बनते थे। चीन के पट्ट का उल्लेख अर्थशास्त्र में मिलता है। जिससे ज्ञात होता है कि रेश चीन से आता था। मेगस्थनीज ने भी भारतीय वस्त्रों की बडी प्रशंसा किया है।

मेगस्थनीय का कथन है कि इस देश में सोना और चांदी बहुत होता है। तांबा व लोहा भी प्रचूरता में उपलब्ध था। जस्ता तथा अन्य धातुएं भी उपलब्ध थी। इनका उपयोग आभूषण, अस्त, शास्त्र तथा साज सामान एवं सिक्को के लिये किया जाता था। इससे ज्ञात होता है कि इस युग में खानो से कच्ची धातु निकालने, उसे गलाने शुद्ध करने और लचीला बनाने की अच्छी जानकारी प्रस्तुत हो चुकी थी। सोने और चांदी के अनेक प्रकार के आभूषण तथा सिक्के सूवर्णाध्यक्षा व लक्षणाध्यक्ष के निरीक्षण में बनते थे। मणिमुक्ताओं का उपयोग समृद्ध परिवारों में होता था। मोतियों को अनेक लड़ियों में पिरोकर हार बनाये जाते थे। एरियन का कथन है कि ''भारत में धनी लोग अपने कानों में हाथीदांत के उच्चकोटि के आभूषण पहनते थे।

इन उद्योगो के अतिरिक्त अनेको प्रकार के अन्य उद्योग भी मौर्य काल मे प्रचलित थे। जैसे हाथी दांत का काम, मिट्टी के बर्तन, चर्म उद्योग, काष्ठ उद्योग आदि।

नियकिस ने लिखा है कि ''भारतीय स्वेत रंग के जूत पहनते हैं जो अति सुन्दर होते हैं। मौर्यकाल के काली आपदार मिटटी के बर्तन मिले हें। जो पुरावेत्ताओं के अनुसार ऊचे वर्ग के लोगो द्वारा प्रयोग में लाये जाते थे। पत्थर तराशने का कार्य भी विकसित अवस्था में था। अशोक के स्तम्भ इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। पत्थर पर पॉलिश का काम अपने चरम उत्कर्ष पर था। सरनाथ सिंह स्तम्भ तथा बराबर गुफाओं की चमक अद्वितीय है।

रोमिला थापर का मत है कि ''इन समस्त निर्मित वस्तुओं पर कर लगाया जाता था। उन पर उत्पादन की तिथि भी अंकित कर दी जाती थी। जिससे उपभोक्ताओं को पुरानी तथा नई वस्तुओं की पहचान हो सके। इन वस्तुओं पर कर निर्धारण से पहले वाणिज्य अधीक्षक प्रचलित मूल्य, पूर्ति मांग तथा उत्पादन व्यय आदि अनेक बातों पर विचार करता था।

सम्पूर्ण भारत वर्ष को एक राजनैतिक सूत्र में आबद्ध हो जाने के फलस्वरूप मौर्य काल में आतंरिक तथा विदेशी दोनों व्यापार को काफी प्रोत्साहन मिला। उत्तर पश्चिम दक्षिण की

विजय से दक्षिण व्यापार मार्ग तथा पश्चिम व्यापार मार्ग पर मौर्या के अधिकार में आ गया। दक्षिण की विजय से दक्षिण व्यापार मार्ग तथा पश्चिम व्यापार मार्ग पर मौर्यों का नियंनत्रण हो गया। कलिंग की विजय से पूर्व में दक्षिण पूर्व मार्ग भी साफ हो गया। मेगस्थनीज के विवरण से स्पष्ट है कि मार्ग निर्माण का एक विशेष अधिकारी होता था जो ऐग्रोनोमोई कहलाता था। ये सड़क की देखरेख करते थे और 10 स्टेडियम की दूरी पर एक स्तम्भ खड़ा कर देते थे।

साम्राज्य के राजमार्गों में पाटलिपुत्र से एक मार्ग पश्चिमोतर प्रदेश को जाता था जिसकी लम्बाई मेगस्थनीज के अनुसार 1300 मील थी। पाटलिपुत्र के आगे यह मार्ग वामलिखि तक जाता था। दूसरा महत्वपूर्ण मार्ग हैमवत पथ था। जो हिमालय की ओर जाता था। हिमालय की ओर जाने वाले मार्ग की तुलना दक्षिण को जाने वाले मार्ग से करते हुए कौटिल्य ने दक्षिण मार्ग को अधिक लाभदायक बताया है। क्योंकि दक्षिण से बहुमूल्य व्यापार वस्तुओं मुक्ता, मणि, हीरे, सोना, शंख आदि आते थे। दक्षिण के लिये एक पुराना मार्ग श्रावस्ती से गोदावरी के तटवर्ती नगर प्रतिष्ठान तक जाता था। उत्तर की ओर एक पुराना मार्ग चम्पा से बनारस तक और जमुना के किनारे–किनारे कौशाम्बी तक जाता था। एक तीसरा मार्ग श्रावस्ती से राजगृह तक जाता था।

पश्चिमी तट पर भी समुन्द्री मार्ग भड़ौच तथा कठियावाड होकर लंका तक जाता था। पश्चिम तट पर सोपारा भी एक महत्वपूर्ण बंदरगाह था। पूर्व में जहाज बंगाल में तामलिखि बन्दरगाह से पूर्वी तट के अनेक बन्दरगाहों से होते हुए लंका तक जाते थे। रोमिला थापर के अनुसार अशोक द्वारा कलिंग विजय का एक कारण व्यापार की दृष्टि से कलिंग का महत्व था।

साम्राज्य के भिन्न–भिन्न प्रदेश भिन्न–भिन्न वस्तुओं के लिये प्रसिद्ध थे। कश्मीर, कोशल, विदर्भ व कलिंग हीरे के लिए प्रख्यात थे। हिमालय प्रदेश चमड़े के लिए प्रसिद्ध था। मगध व सुवणकुण्ड वृक्षो के रेशे से बने हुए वस्त्रों के लिये, काशी सभी प्रकार के वस्त्रों के लिये, बंगाल मलमल के लिए तथा ताग्रलिखि, पाण्डय व केरल अपने मोतियों के लिये प्रसिद्ध थे। इन सभी वस्तुओं का व्यापार देश तथा विदेश में स्थल व जल दोनों मार्गों से होता था। कौटिल्य ने स्थल मार्गीय व्यापार की अपेक्षा नदीं मार्गों से व्यापार को अधिक सुरक्षित माना है। क्योंकि जलिय मार्ग चोर, डाकुओं के भय से मुक्त था। जबकि स्थलीय मार्ग में अनेक कठिनाईयां थी। चोरों तथा जंगली जानवरों से विशेष भय था। कठिनाईयों के कारण व्यापारी काफिलों में संगठित होकर चलते थे। यात्रियों को यातायात एवं सुरक्षा सम्बन्धी सुविधाएं राज्य की ओर से दी जाती थी। कौटिल्य का कथन है कि ''तुफान के कारण आहत हुआ जब कोई जहाज बंदरगाह पर पहुंचे तो बंदरगाह के अध्यक्ष को उस पर पिता की भांति अनुग्रह कराना चाहिए।'' यदि मार्ग में व्यापारियों का नुकसान हो जाता था तो राज्य उसकी क्षतिपूर्ति करता था।

अनादेशीय व्यापार की भांति स्थलीय तथा जलीय दोनों मार्गों से विदेशी व्यापार भी अपनी चरम उन्नति पर था। अर्थशास्त्र में विदेशी सार्थवाहों–काफिलों का उल्लेख आया है जो पश्चिमोत्तर भारत के स्थलीय मार्गों से व्यापार के लिये आते थे। समुन्द्र में आने जाने वाले जहाज प्रवहण कहलाते थे।

यूनानी शासकों के साथ महत्वपूर्ण सम्बन्ध की वजह से पश्चिम एशिया व मिस्र के साथ भारत के व्यापार के लिये अनुकूल वातावरण बना। एक मुख्य मार्ग तक्षशिला से काबुल वैक्ट्रीया और वहां से पश्चिम देशों की तरफ जाता था।

समुन्द्री मार्ग भारत के पश्चिमी समुन्द्र तट से पारस की खाड़ी होते हुए अदन तक जाता था। भारत और मिस्र से आने वाली व्यापारिक वस्तुओं विनिमय अरब सागर के तटवर्ती बन्दरगाहों पर होता था। भारत से मिस्र को हाथी दांत कछुए, सीपियां, मोती, रंग, नील व बहूमूल्य लकड़ी निर्यात होती थी।

भारत में आने वाली विदेशी सामग्री में चीनपटट् और कार्दनिक मुक्ता का विशेष महत्व था। भारत तथा मिस्र के व्यापार को प्रोत्साहन बरनिस नाम का एक बन्दरगाह स्थापित करवाया था। मौर्य विदेशियों की देखरेख के लिये एक विशेष समिति का होना इस बात का प्रमाण है कि भारत तथा विदेशों के बीच आवागमन की अच्छी सुविधा थी जिससे व्यापार को काफी प्रोत्साहन मिला। रोमिल थापर का विचार है कि ''पण्य वस्तुओं की बिक्री पर कडी दुष्टि रखी जाती थी। पण्य वस्तुओं के मूल्य का पांचवा भाग चुंगी के रूप में निर्धारित किया जाता था और इसके अतिरिक्त चुंगी का पांचवा भाग व्यापार कर होता था। करो की चोरी अवश्य होती थी लेकिन उनके लिये कड़े दण्ड व्यवस्था थी व्यापारियों को अत्यधिक मुनाफाखोरी रोकने के लिए मूल्यों पर नियंत्रण रखा जाता था और आम तौर पर लाभ का प्रतिशत भी निश्चित रहता था। बैंकिंग प्रणाली नहीं थी। लेकिन रूपया ब्याज पद देने की प्रथा थी।

अर्थशास्त्र में अनेक प्रकार की मौर्यकालीन मुद्राओं के नाम आते हैं जिनमें निम्न प्रमुख हैंः— सुवर्णकर्षाण, पण या धरण चांदी, माषक—तांबा, काकणि—तांबे का कौटिल्य ने समस्त मुद्राओं को दो कोटियों में बांटा है। प्रथम कोटी में कीष प्रवेश्य मुद्रायें आती थी। सम्पूर्ण राजकीय कार्यों में इन्हीं मुद्राओं का प्रयोग होता था। दूसरी कोटि में व्यवाहरिक मुद्रांए थी। जनता का साधारण लेनदेन इन्हें मुद्राओं के द्वारा होता था। मुद्रा निर्माण एक मात्र सरकारी टकसालों में होता था। टकसाल के अधिकारी को कौटिल्य ने सौवणिक और लक्षणाध्यक्ष के नाम दिये हैं।